IJAREEIE

e-ISSN: 2278-8875
p-ISSN: 2320-3765

International Journal of Advanced Research

in Electrical, Electronics and Instrumentation Engineering

Volume 11, Issue 4, April 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 8.18

International Journal of Advanced Research in Electrical, Electronics and Instrumentation Engineering (IJAREEIE)

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

सिद्धों का प्राचीन स्थापत्य कला पर प्रभाव

DR. YASHWANT SHAURYA

ASSISTANT PROFESSOR, HEAD OF DEPT. OF HISTORY, MAULANA AZAD UNIVERSITY, BUJHAWAR, JODHPUR, RAJASTHAN, INDIA

सार

भारत के स्थापत्य की जड़ें यहाँ के इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति में निहित हैं। भारत की वास्तुकला यहाँ की परम्परागत एवं बाहरी प्रभावों का मिश्रण है।

भारतीय वास्तु की विशेषता यहाँ की दीवारों के उत्कृष्ट और प्रचुर अलंकरण में है। भित्तिचित्रों और मूर्तियों की योजना, जिसमें अलंकरण के अतिरिक्त अपने विषय के गंभीर भाव भी व्यक्त होते हैं, भवन को बाहर से कभी कभी पूर्णतया लपेट लेती है। इनमें वास्तु का जीवन से संबंध क्या, वास्तव में आध्यात्मिक जीवन ही अंकित है। न्यूनाधिक उभार में उत्कीर्ण अपने अलौकिक कृत्यों में लगे हुए देश भर के देवी देवता, तथा युगों पुराना पौराणिक गाथाएँ, मूर्तिकला को प्रतीक बनाकर दर्शकों के सम्मुख अत्यंत रोचक कथाओं और मनोहर चित्रों की एक पुस्तक सी खोल देती हैं।

'वास्तु' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वस्' धातु से हुई है जिसका अर्थ 'बसना' होता है। चूंकि बसने के लिये भवन की आवश्यकता होती है अतः 'वास्तु' का अर्थ 'रहने हेतु भवन' है। 'वस्' धातु से ही वास, आवास, निवास, बसति, बस्ती आदि शब्द बने हैं।

परिचय

सिन्धुघाटी का स्थापत्य

दो-तीन हजार वर्ष ई. पू. विकसित सिंधु घाटी सभ्यता की खोज से एक आश्चर्यजनक तथ्य प्रकाश में आया है कि भारत की प्राचीनतम कला सौंदर्य की दृष्टि से ऐसी ही शून्य थी, जैसी आजकल की कोई भी सभ्यता। जब आजकल की कोई भी सभ्यता जागरण की अँगड़ाई भी न ले पाई थी तब भारत की यह कला इतनी विकसित थी। इन बस्तियों के निर्माताओं का नगर नियोजन संबंधी ज्ञान इतना परिपक्व था, उनके द्वारा प्रयुक्त सामग्री ऐसी उत्कृष्ट कोटि की थी और रचना इतनी सुदृढ़ थी कि उस सभ्यता का आरंभ बहुत पहले, लगभग चार पाँच हजार वर्ष, ईसा पूर्व, मानने को बाध्य हो पड़ता है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से प्राप्त अवशेष तत्कालीन भौतिक समृद्धि के सूचक हैं और उनमें किसी मंदिर, देवालय आदि के अभाव से यह अनुमान होता है कि वहाँ धार्मिक विचारों का कुछ विशेष स्थान न था, अथवा यदि था तो वह निराकार शक्ति में आस्था के रूप में ही था। फिर भी, विलक्षण प्रतिभा और उत्कृष्ट वास्तुकौशल से आद्योपांत परिप्लावित भारतीय जनजीवन के इतिहास का ऐसा आडंबरहीन आरंभ आश्चर्यजनक होने के साथ-साथ और अधिक गवेषण की अपेक्षा रखता है, जिससे आर्य सभ्यता से, जो इससे भी प्राचीन मानी जाती है, इसका संबंध जोड़नेवाली कड़ी का पता लग सके।

प्राचीन भारतीय स्थापत्य

सीमित आवश्यकताओं में विश्वास रखनेवाले, अपने कृषिकर्म और आश्रमजीवन से संतुष्ट आर्य प्राय: ग्रामवासी थे और शायद इसीलिए, अपने परिपक्व विचारों के अनुरूप ही, समसामयिक सिंधु घाटी सभ्यता के विलासी भौतिक जीवन की चकाचौंध से अप्रभावित रहे। कुछ भी हो, उनके अस्थायी निवासों से ही बाद के भारतीय वास्तु का जन्म हुआ प्रतीत होता है। इसका आधार धरती में और विकास वृक्षों में हुआ, जैसा वैदिक वाङ्मय में महावन, तोरण, गोपुर आदि के उल्लेखों से विदित होता है। अत: यदि उस अस्थायी रचनाकाल की कोई स्मारक कृति आज देखने को नहीं मिलती, तो कोई आश्चर्य नहीं।[1,2]

धीरे-धीरे नगरों की भी रचना हुई और स्थायी निवास भी बने। बिहार में मगध की राजधानी राजगृह शायद 8वीं शती ईसा पूर्व में उन्नति के शिखर पर थी। यह भी पता लगता है कि भवन आदिकालीन झोपड़ियों के नमूने पर प्रायः गोल ही बना करते थे। दीवारों में कच्ची ईंटें भी लगने लगी थीं और चौकोर दरवाजे खिड़कियाँ बनने लगी थीं। बौद्ध लेखक धम्मपाल के अनुसार, पाँचवीं शती ईसा पूर्व में महागोविन्द नामक स्थपति ने उत्तर भारत की अनेक राजधानियों के विन्यास तैयार किए थे। चौकोर नगरियाँ बीचोबीच दो मुख्य सड़कें बनाकर चार चार भागों में बाँटी गई थीं। एक भाग में राजमहल होते थे, जिनका विस्तृत वर्णन भी मिलता है। सड़कों के चारों सिरों पर नगरद्वार थे। मौर्यकाल (4थी शती ई. पू.) के अनेक नगर कपिलवस्तु, कुशीनगर, उरुबिल्व आदि एक ही नमूने के थे, यह

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

इनके नगरद्वारों से प्रकट होता है। जगह-जगह पर बाहर निकले हुए छज्जों, स्तंभों से अलंकृत गवाक्षों, जँगलों और कटहरों से बौद्धकालीन पवित्र नगरियों की भावुकता का आभास मिलता है।

राज्य का आश्रय पाकर अनेक स्तूपों, चैत्यों, बिहारों, स्तम्भों, तोरणों और गुफामंदिरों में वास्तुकला का चरम विकास हुआ। तत्कालीन वास्तुकौशल के उत्कृष्ट उदाहरण पत्थर और ईंट के साथ-साथ लकड़ी पर भी मिलते हैं, जिनके विषय में सर जॉन मार्शल ने "भारत का पुरातात्विक सर्वेक्षण, 1912-13" में लिखा है कि "वे तत्कलीन कृतियों की अद्वितीय सूक्ष्मता और पूर्णता का दिग्दर्शन कराते हैं। उनके कारीगर आज भी यदि संसार में आ सकते, तो अपनी कला के क्षेत्र में कुछ विशेष सीखने योग्य शायद न पाते"। साँची, भरहुत, कुशीनगर, बेसनगर (विदिशा), तिगावाँ (जबलपुर), उदयगिरि, प्रयाग, कार्ली (मुम्बई), अजन्ता, इलोरा, विदिशा, अमरावती, नासिक, जुनार (पूना), कन्हेरी, भुज, कोंडेन, गांधार (वर्तमान कंधार-अफगानिस्तान), तक्षशिला पश्चिमोत्तर सीमान्त में चौथी शती ई. पू. से चौथी शती ई. तक की वास्तुकृतियाँ कला की दृष्टि से अनूठी हैं। दक्षिण भारत में गुंतूपल्ले (कृष्ण जिला) और शंकरन् पहाड़ी (विजगापट्टम् जिला) में शैलकृत्त वास्तु के दर्शन होते हैं। साँची, नालन्दा और सारनाथ में अपेक्षाकृत बाद की वास्तुकृतियाँ हैं।

पाँचवीं शती से ईंट का प्रयोग होने लगा। उसी समय से ब्राह्मण प्रभाव भी प्रकट हुआ। तत्कालीन ब्राह्मण मंदिरों में भीटागाँव (कानपुर जिला), बुधरामऊ (फतेहपुर जिला), सीरपुर और खरोद (रायपुर जिला), तथा तेर (शोलापुर के निकट) के मंदिरों की शृंखला उल्लेखनीय है। भीटागाँव का मंदिर, जो शायद सबसे प्राचीन है, 36 फुट वर्ग के ऊँचे चबूतरे पर बुर्ज की भाँति 70 फुट ऊँचा खड़ा है। बुधरामऊ का मंदिर भी ऐसा ही है। अन्य हिंदू मंदिरों की भाँति इनमें मण्डप आदि नहीं है, केवल गर्भगृह हैं। भीतर दीवारें यद्यपि सादी हैं, तथापि उनमें पट्टे, किंगरियाँ, दिल्हे, आले आदि, रचना की कुछ विशिष्टताएँ इमारतों की प्राचीनता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके विभिन्न भागों का अनुपात सुंदर है और वास्तु प्रभाव कौशलपूर्ण। आलों में बौद्धचैत्यों की डाटों का प्रभाव अवश्य पड़ा दिखाई पड़ता है। इनकी शैलियों का अनुकरण शताब्दियों बाद बननेवाले मंदिरों में भी हुआ है।

हिंदू वास्तुकौशल का विस्तार महलों, समाधियों, दुर्गों, बावड़ियों और घाटों में भी हुआ, किन्तु देश भर में बिखरे मंदिरों में यह विशेष मुखर हुआ है। गुप्तकाल (350-650 ई.) में मंदिरवास्तु के स्वरूप में स्थिरता आई। ७वीं शती के अंत में शिखर महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग समझा जाने लगा। मंदिरवास्तु में उत्तर की ओर आर्य शैली और दक्षिण की ओर द्रविड़ शैली स्पष्ट दीखती है। ग्वालियर के "तेली का मंदिर" (११वीं शती) और भुवनेश्वर के "बैताल देवल मंदिर" (९वीं शती) उत्तरी शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं और सोमंगलम्, मणिमंगलम् आदि के चोल मंदिर (११वीं शती) दक्षिणी शैली का। किंतु ये शैलियाँ किसी भौगोलिक सीमा में बँधी नहीं हैं। चालुक्यों की राजधानी पट्टदकल के दस मंदिरों में से चार (पप्पानाथ - 680 ई., जंबुलिंग, करसिद्धेश्वर, काशीविश्वनाथ) उत्तरी शैली के और छह (संगमेश्वर - 75 ई., विरूपाक्ष - 740 ई., मल्लिकार्जुन-740 ई., गलगनाथ-740 ई., सुनमेश्वर और जैन मंदिर) दक्षिणी शैली के हैं। 10 वीं - 11 वीं शती में पल्लव, चोल, पांड्य, चालुक्य और राष्ट्रकूट सभी राजवंशों ने दक्षिणी शैली का पोषण किया। दोनों ही शैलियों पर बौद्ध वास्तु का प्रभाव है, विशेषकर शिखरों में।[3,4]

भारत की ऐतिहासिक इमारतों की माया और रहस्य के पीछे अनेक किंवदंतियाँ हैं। मध्य भारत के कुछ सर्वश्रेष्ठ मंदिर एक काल्पनिक राजकुमार जनकाचार्य द्वारा बनाए कहे जाते हैं, जिसे ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त स्वरूप बीस वर्ष इस काम में लगाने पड़े थे। एक अन्य किंवदंति के अनुसार ये असाधारण इमारतें एक ही रात में पाण्डवों न खड़ी की थीं। उत्तरी गुजरात का विशाल मंदिर (1125 ई.) गुजरात-नरेश सिद्धराज द्वारा और खानदेश के मंदिर गवाली राजवंश द्वारा निर्मित कह जाते हैं। दक्षिण के अनेक मंदिर राजा रामचंद्र के मंत्री हेमदपन्त के धार्मिक उत्साह से बने कहे जाते हैं और 13वीं शती के कुछ मंदिरों की शैली ही हेमदपन्ती कहलाने लगी है। इसे अज्ञात निर्माताओं की शालीनता कहें, या ऐतिहासिक तमिस्र, किंतु इसमें सन्देह नहीं कि मंदिरवास्तु, जिसे अनूठे उदाहरण भुवनेश्वर के लिंगराज (1000 ई.), मुक्तेश्वर (975 ई.), ब्रह्मेश्वर (1075 ई.), रामेश्वर (1075 ई.), परमेश्वर, उत्तरेश्वर, ईश्वरेश्वर, भरतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर आदि मंदिर, कोणार्क का सूर्यमंदिर, ममल्लिपुरम् के सप्तरथ, कांचीवरम् का कैलाशनाथ मंदिर, श्री निवासनालुर (त्रिचनापल्ली जिला) का कोरंगनाथ मंदिर, त्रिचनापल्ली का जम्बुकेश्वर मंदिर, दारासुरम् (तंजौरजिला) का ऐरावतेश्वर मंदिर, तंजौर के सुब्रह्मण्यम् एवं बृहदेश्वर मंदिर, विजयनगर का विट्ठलस्वामी मंदिर (16 वीं शती), तिरुवल्लूर एवं मदुरा के विशाल मंदिर, त्रावनकोर का शचीन्द्रम् मंदिर (16 वीं शती), रामेश्वर के विशाल मंदिर (17 वी शती) वेलूर (मैसूर) का चन्नकेशव मंदिर (12 वीं शती), सोमनाथपुर (मैसूर) का केशव मंदिर (1268 ई.), पुरी का जगन्नाथ मंदिर (1100 ई.), खजुराहो की आदिनाथ, विश्वनाथ, पार्श्वनाथ और कंदरिया महादेव मंदिर, किराडू (मेवाड़) के शिव मंदिर (11 वीं शती), आबू के तेजपाल (13 वीं शती) तथा विमल मंदिर (11 वी शती), ग्वलियर का सासबहू मंदिर एवं उदयेश्वर मंदिर (दोनों 11 वीं शती) सेजाकपुर (काठियावाड़) का नवलखा मंदिर (11 वीं शती), पट्टन का सोमनाथ मंदिर (12 वीं शती), मोधेरा (बड़ोदा) का सूर्य मंदिर (11 वीं शती), अंबरनाथ (थानाजिला) का महादेव मंदिर (11 वीं शती), जोगदा (नासिक जिला) का मानकेश्वर मंदिर, मथुरा वृंदावन का गोविंददेव मंदिर (1590 ई.), शत्रुंजय पहाड़ी (काठियावाड़) के जैन मंदिर, रणपुर (सादरी जोधपुर) का आदिनाथ मंदिर (1450 ई.) आदि आदि देश भर में बिखरे पड़े हैं,

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

जो भव्यता, विशालता, उत्कृष्टता और सर्थकता सभी दृष्टियों से अनुपम है। देश में साथ साथ विकसित होते हुए बौद्धवास्तु, जैन वास्तु, हिंदू वास्तु, तथा द्रविण वास्तु की ये झाँकियाँ विशाल भारत की परंपरागत धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण हैं।

मध्यकालीन मुस्लिम वास्तु

वास्तुकला पर मुसलमानों के आक्रमण का जितना प्रभाव भारत में पड़ा उतना अन्यत्र कहीं नहीं, क्योंकि जिस सभ्यता से मुस्लिम सभ्यता की टक्कर हुई, किसी से उसका इतना विरोध नहीं था जितना भारतीय सभ्यता से। चिर प्रतिष्ठित भारतीय सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों की तुलना में मुस्लिम सभ्यता बिलकुल नई तो थी ही, उसके मौलिक सिद्धात भी भिन्न थे। दोनों का संघर्ष यथार्थवाद का आदर्शवाद से, वास्तविकता का स्वप्नदर्शिता से और व्यक्त का अव्यक्त से संघर्ष था, जिसका प्रमाण मस्जिद और मंदिर के भेद में स्पष्ट है। मस्जिदें खुली हुई होती हैं, उनका केंद्र सुदूर मक्का की दिशा में होता है; जबकि मंदिर रहस्य का घर होता है, जिसका केंद्र अनेक दीवारों एवं गलियारों से घिरा हुआ बीच का देवस्थान या गर्भगृह होता है। मजिस्द की दीवारें प्राय: सादी या पवित्र आयतों से उत्कीर्ण होती हैं, उनमें मानव आकृतियों का चित्रण निषिद्ध होता है; जबकि मंदिरों की दीवारों में मूर्तिकला और मानवकृति चित्रण उच्चतम शिखर पर पहुँचा, पर लिखाई का नाम न था। पत्थरों के सहल रंगों में ही इस चित्रण द्वारा मंदिरों की सजीवता आई; जबकि मस्जिदों में रंगबिरंगे पत्थरों, संगमर्मर और चित्र विचित्र पलस्तर के द्वारा दीवारें मुखर की गई।[5,6]

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर एक ही प्रकार की भारी भरकम संरचनाएँ खड़ी करने में सिद्धहस्त, भारतीय कारीगरों की युगों युगों से एक ही लीक पर पड़ी, निष्प्रवाह प्रतिभा, विजेताओं द्वारा अन्य देशों से लाए हुए नए सिद्धांत, नई पद्धतियाँ और नई दिशा पाकर स्फूर्त हो उठी। फलस्वरूप धार्मिक इमारतों, जैसे मस्जिदों, मकबरों, रौजों और दरगाहों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार की धर्मनिरपेक्ष इमारतें भी, जैसे महल, मंडप, नगरद्वार, कूप, उद्यान और बड़े बड़े किले, यहाँ तक कि सारा शहर घेरनेवाले परकोटे तक तैयार हुए। देश में उत्तर से दक्षिण तक जैसे जैसे मुस्लिम प्रभत्व बढ़ता गा, वास्तुकला का युग भी बदलता गया।

मुस्लिम वास्तु के चार चरण

मुस्लिम वास्तु के तीन क्रमिक चरण स्पष्ट हैं। पहला चरण, जो बहुत थोड़े समय रहा, विजयदर्प और धर्मांधता से प्रेरित "निर्मूलन" का था, जिसके बारे में हसन निज़ामी लिखता है कि प्रत्येक किला जीतने के बाद उसके स्तंभ और नींव तक महाकाय हाथियों के पैरों तले रौंदवाकर धूल में मिला देने का रिवाज था। अनेक दुर्ग, नगर और मंदिर इसी प्रकार अस्तित्वहीन किए गए। तदनंतर दूसरा चरण सोद्देश्य और आंशिक विध्वंस का आया, जिसमें इमारतें इसलिए तोड़ी गईं कि विजेताओं की मस्जिदों और मकबरों के लिए तैयार माल उपलब्ध हो सके। बड़ी-बड़ी धरनें और स्तम्भ अपने स्थान से हटाकर नई जगह ले जाने के लिए भी हाथियों का ही प्रयोग हुआ। प्रय: इसी काल में मंदिरों को विशेष क्षति पहुँची, जो विजित प्रांतों की नई नई राजधानियों के निर्माण के लिए तैयार माल की खान बन गए और उत्तर भारत से हिंदू वास्तु की प्राय: सफ़ाई ही हो गई। अंतिम चरण तब आरंभ हुआ, जब आक्रांता अनेक भागों में भली भाँति जग गए थे और उन्होंने प्रत्यवस्थापन के बजाय योजनाबद्ध निर्माण द्वारा सुविन्यस्त और उत्कृष्ट वास्तुकृतियाँ वस्तुत कीं।

मुस्लिम वास्तु की तीन शैलियाँ

शैलियों की दृष्टि से भी मुस्लिम वास्तु के तीन वर्ग हो सकते हैं। पहली दिल्ली शैली, अथवा शहंशाही शैली है, जिसे प्राय: "पठान वास्तु" (1193-1554) कहते हैं (यद्यपि इसके सभी पोषक "पठान" नहीं थे)। इस वर्ग में दिल्ली की कुतुबमीनार (1200), सुल्तान गढ़ी (1231), अल्तमश का मकबरा (1236), अलाई दरवाज़ा (1305), निजामुद्दीन (1320), गयासुद्दीन तुगलक (1325) और फीरोजशाह तुगलक (1388) के मकबरे, कोटला फीरोजशाह (1354-1490), मुबारकशाह का मकबरा (1434), मेरठ की मस्जिद (1505), शेरशाह की मस्जिद (1540-45) सहसराम का शेरशाह का मकबरा (1540-45) और अजमेर का अढ़ाई दिन का झोंपड़ा (1205) आदि उल्लेखनीय हैं।[7,8]

दूसरे वर्ग में प्रांतीय शैलियाँ हैं। इनमें पंजाब शैली (1150-1325 ई.); जैसे मुल्तान के श्रकने आलम (1320) और शाहयूसुफ गर्दिजी (1150), तब्रिजी (1276), बहाउलहक (1262) के मकबरे; बंगाल शैली (1203-1573) : जैसे पंडुआ की अदीना मस्जिद (1364), गौर के फतेहखाँ का मकबरा (1657), कदम रसूल (1530), तांतीमारा मस्जिद (1475); गुजरात शैली (1300-1572) : जैसे खंबे (1325), अहमदाबाद (1423), भड़ोच और चमाने (1523) की जामा मस्जिदें, नगीना मस्जिद मकबरा (1525); जौनपुर शैली (1376-1479) : जैसे अटाला मस्जिद (1408), लाल दरवाजा मस्जिद (1450), जामा मस्जिद (1470); मालवा शैली (1405-1569) : जैसे माडू के जहाजमहल (1460), होशंग का मकबरा (1440), जामा मस्जिद (1440), हिंडोला महल (1425), धार की लाट मस्जिद (1405), चंदेरी का बदल महल फाटक (1460), कुशक महल (1445), शहज़ादी का रौजा (1450); दक्षिणी शैली (1347-1617) : जैसे गुलबर्ग की जामा मस्जिद (1367) और हफ्त गुंबज (1378), बीदर का मदरसा (1481), हैदराबाद की चारमीनार (1591) आदि; बीजापुर खानदेश शैली (1425-1660), जैसे बीजापुर के गोलगुंबज (1660), रौजा इब्राहीम (1615) और जामा मस्जिद (1570),

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

थालनेर खानदेश के फारूकी वंश के मकबरे (15 वीं शती); और कश्मीर शैली (15-17 वीं शती) : जैसे श्रीनगर की जामा मस्जिद (1400), शाह हमदन का मकबरा (17 वीं शती) आदि, सम्मिलित हैं।

तीसरे वर्ग में मुगल शैली आती है, जिसके उत्कृष्टतम नमूने दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी, लखनऊ, लाहौर आदि में किलों, मकबरों, राजमहलों, उद्यान मंडपों आदि के रूप में मौजूद हैं। इसी काल में कला पत्थर से बढ़कर संगमर्मर तक पहुँची और दिल्ली के दीवाने खास, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद और आगरा के ताजमहल जैसी विश्वविश्रुत कृतियाँ तैयार हुई।

बृहत्तर भारत का वास्तु

भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने भारत के बाहर श्रीलंका, नेपाल, बरमा, स्याम, जावा, बाली, हिंदचीन और कंबोडिया में भी मिलते हैं। नेपाल के शंभुनाथ, बोधनाथ, मामनाथ मंदिर, लंका में अनुराधापुर का स्तूप और लंकातिलक मंदिर, बरमा के बौद्ध मठ और पगोडा, कंबोडिया में अंकोर के मंदिर, स्याम में बैंकाक के मंदिर, जावा में प्रांबनाम का बिहार, कलासन मंदिर और बोरोबंदर स्तूप आदि हिंदू और बौद्ध वास्तु के व्यपक प्रसार के प्रमाण हैं। जावा में भारतीय संस्कृति के प्रवेश के कुछ प्रमाण 4 वी शती ईसवी के मिलते हैं। वहाँ के अनेक स्मारकों से पता लगता है कि मध्य जावा में 625 से 928 ई. तक वास्तुकला का स्वर्णकाल और पूर्वी जावा में 928 से 1478 ई. तक रजतकाल था।[9,10]

बीसवीं शती का वास्तु

सन् 1911 ई. में ब्रिटिश राज्य उन्नति के शिखर पर था। उसी समय दिल्ली दरबार में घोषणा की गई और साम्राज्य की राजधानी के अनुरूप एक नई दिल्ली में और सारे भारत के जिला सदर स्थानों तक में, सुंदर इमारतें बनवाई, जिनमें अनेक कार्यालय भवन, गिरजे और ईसाई कब्रिस्तान कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सरकारी प्रयास से नई दिल्ली में राजभवन (अब राष्ट्रपति भवन), सचिवालय भवन, संसद् भवन जैसी भव्य इमारतें बनीं, जिनमें पाश्चात्य कला के साथ हिंदू, बौद्ध और मुस्लिम कला का सुखद सम्मिश्रण दिखाई देता है।

मंदिर वास्तु भी, जो केवल व्यक्तिगत प्रयास से अपना अस्तित्व बनाए रहा, कुछ कुछ इसी दिशा में झुका। मुस्लिम वास्तु के अनुकरण पर अशोककालीन शिलालेखों की प्रथा पुन: प्रतिष्ठित हुई और मंदिरों मे भीतर बाहर, मूर्तियों और चित्रों के साथ लेखों को भी स्थान मिलने लगा। दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मंदिर और हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, का शिवमंदिर बीसवीं शती के मंदिरवास्तु की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। मंदिरों के अतिरिक्त राजाओं के महल और विद्यालय आदि भी कला को प्रश्रय देते रहे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय की सभी इमारतें और वाराणसी का भारतमाता मंदिर, काशी विश्वनाथ की मंदिरोंवाली नगरी में दर्शकों के लिए विशेष आकर्षण के केंद्र हैं। कुशीनगर में बने निर्वाण बिहार, बुद्ध मंदिर और सरकारी विश्रामगृह में बौद्ध कला को पुनर्जीवन मिला है। दिल्ली में लक्ष्मीनारायण मंदिर के साथ भी एक बुद्ध मंदिर है। इस प्रकार किसी शैली विशेष के पति अनाग्रह और उत्कृष्टता के लिए समन्वय 20 वीं शती की विशेषता समझी जा सकती है।

विचार-विमर्श

कला की दृष्टि से हड़प्पा की सभ्यता और मौर्यकाल के बीच लगभग 1500 वर्ष का अंतराल है। इस बीच की कला के भौतिक अवशेष उपलब्ध नहीं है। महाकाव्यों और बौद्ध ग्रंथों में हाथीदाँत, मिट्टी और धातुओं के काम का उल्लेख है। किन्तु मौर्यकाल से पूर्व वास्तुकला और मूर्तिकला के उदाहरण कम ही मिलते हैं। मौर्यकाल में ही पहले—पहल कलात्मक गतिविधियों का इतिहास निश्चित रूप से प्रारम्भ होता है। राज्य की समृद्धि और मौर्य शासकों की प्रेरणा से कलाकृतियों को प्रोत्साहन मिला।

इस युग में कला के दो रूप मिलते हैं। एक तो राजरक्षकों के द्वारा निर्मित कला, जो कि मौर्य प्रासाद और अशोक स्तंभों में पाई जाती है। दूसरा वह रूप जो परखम के यक्ष दीदारगंज की चामर ग्राहिणी और वेसनगर की यक्षिणी में देखने को मिलता है। राज्य सभा से सम्बन्धित कला की प्रेरणा का स्रोत स्वयं सम्राट था। यक्ष—यक्षिणियों में हमें लोककला का रूप मिलता है। लोककला के रूपों की परम्परा पूर्व युगों से काष्ठ और मिट्टी में चली आई है। अब उसे पाषाण के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया।

राजकीय कला

राजकीय कला का सबसे पहला उदाहरण चंद्रगुप्त का प्रासाद है, जिसका विशद वर्णन एरियन ने किया है। उसके अनुसार राजप्रासाद की शान—शौक़त का मुक़ाबला न तो सूसा और न एकबेतना ही कर सकते हैं। यह प्रासाद सम्भवतः वर्तमान पटना के निकट कुम्रहार गाँव के समीप था। कुम्रहार की खुदाई में प्रासाद के सभा—भवन के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उससे प्रासाद की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह सभा—भवन खम्भों वाला हाल था। सन् 1914—15 की खुदाई तथा 1951 की

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

खुदाई में कुल मिलाकर 40 पाषाण स्तंभ मिले हैं, जो इस समय भग्न दशा में हैं। इस सभा—भवन का फ़र्श और छत लकड़ी के थे। भवन की लम्बाई 140 फुट और चौड़ाई 120 फुट है। भवन के स्तंभ बलुआ पत्थर के बने हुए हैं और उनमें चमकदार पालिश की गई थी। फ़ाह्यान ने अत्यन्त भाव—प्रवण शब्दों में इस प्रासाद की प्रशंसा की है। उसके अनुसार, "यह प्रासाद मानव कृति नहीं है वरन् देवों द्वारा निर्मित है। प्रासाद के स्तंभ पत्थरों से बने हुए हैं और उन पर सुन्दर उकेरन और उभरे चित्र बने हैं।"फ़ाह्यान के वृत्तान्त से पता चलता है कि अशोक के समय इस भवन का विस्तार हुआ।[10,11] [3]

मेगस्थनीज के अनुसार मौर्य कला

मेगस्थनीज़ के अनुसार पाटलिपुत्र, सोन और गंगा के संगम पर बसा हुआ था। नगर की लम्बाई 9-1/2 मील और चौड़ाई 1-1/2 मील थी। नगर के चारों ओर लकड़ी की दीवार बनी हुई थी जिसके बीच—बीच में तीर चलाने के लिए छेद बने हुए थे। दीवार के चारों ओर एक ख़ाई थी जो 60 फुट गहरी और 600 फुट चौड़ी थी। नगर में आने—जाने के लिए 64 द्वार थे। दीवारों पर बहुत से बुर्ज़ थे जिनकी संख्या 570 थी। पटना में गत वर्षों में जो खुदाई हुई उससे काष्ठ निर्मित दीवार के अवशेष प्राप्त हुए हैं। 1920 में बुलंदीबाग़ की खुदाई में प्राचीर का एक अंश उपलब्ध हुआ है, जो लम्बाई में 150 फुट है। लकड़ी के खम्बों की दो पंक्तियाँ पाई गई हैं। जिनके बीच 14-1/2 फुट का अंतर है। यह अंतर लकड़ी के स्लीपरों से ढका गया है। खम्भों के ऊपर शहतीर जुड़े हुए हैं। खम्भों की ऊँचाई ज़मीन की सतह से 12-1/2 फुट है और ये ज़मीन के अन्दर 5 फुट गहरे गाड़े गए थे। यूनानी लेखकों ने लिखा है कि नदी—तट पर स्थित नगरों में प्रायः काष्ठशिल्प का उपयोग होता था। पाटलिपुत्र की भी यही स्थिति थी। सभा—मंडप में शिला—स्तंभों का प्रयोग एक नई प्रथा थी।

मौर्यकाल के सर्वोत्कृष्ट नमूने, अशोक के एकाश्मक स्तंभ हैं जोकि उसने धम्म प्रचार के लिए देश के विभिन्न भागों में स्थापित किए थे। इनकी संख्या लगभग 20 है और ये चुनार (बनारस के निकट) के बलुआ पत्थर के बने हुए हैं। लाट की ऊँचाई 40 से 50 फुट है। चुनार की खानों से पत्थरों को काटकर निकालना, शिल्पकला में इन एकाश्मक खम्भों को काट—तराशकर वर्तमान रूप देना, इन स्तंभों को देश के विभिन्न भागों में पहुँचाना, शिल्पकला तथा इंजीनियरी कौशल का अनोखा उदाहरण है। इन स्तंभों के दो मुख्य भाग उल्लेखनीय हैं—(1) स्तंभ यष्टि या गावदुम लाट (tapering shaft) और शीर्ष भाग। शीर्ष भाग के मुख्य अंश हैं घंटा, जोकि अखमीनी स्तंभों के आधार के घंटों से मिलते—जुलते हैं। भारतीय विद्वान इसे अवांगमुखी कमल कहते हैं। इसके ऊपर गोल अंड या चौकी है। कुछ चौकियों पर चार पशु और चार छोटे चक्र अंकित हैं (जैसे सारनाथ स्तंभ शीर्ष की चौकी पर) तथा कुछ पर हंसपक्ति अंकित है। चौकी पर सिंह, अश्व, हाथी तथा बैल आसीन हैं। रामपुर में नटुवा बैल ललित मुद्रा में खड़ा है। सारनाथ के शीर्ष स्तंभ पर चार सिंह पीठ सटाए बैठे हैं। ये चार सिंह एक चक्र धारण किए हुए हैं। यह चक्र बुद्ध द्वारा धर्म—चक्र—प्रवर्तन का प्रतीक है। अशोक के एकाश्मक स्तंभों का सर्वोत्कृष्ट नमूना सारनाथ के सिहंस्तंभ का शीर्षक है। मौर्य शिल्पियों के रूपविधान का इससे अच्छा दूसरा नमूना और कोई नहीं है। ऊपरी सिंहों में जैसी शक्ति का प्रदर्शन है, उनकी फूली नसों में जैसी स्वाभाविकता है और उनके नीचे उकेरी आकृतियों में जो प्राणवान वास्तविकता है, उसमें कहीं भी आरम्भिक कला की छाया नहीं है। शिल्पों ने सिंहों के रूप को प्राकृतिक सच्चाई से प्रकट किया है।

स्तंभों की—विशेषता

सारनाथ स्तंभ की—चमकीली पालिश, घंटाकृति तथा शीर्ष भाग में पशु आकृति के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि कला को प्रेरणा अखमीनी ईरान से मिली है। चौकी पर हंसों की उकेरी गई आकृतियों और अन्य सज्जाओं में यूनानी प्रभाव भी दिखाई देता है। भारतीय विद्वानों के अनुसार अशोक के स्तंभ की कला का स्रोत भारतीय है। मौर्य स्तंभ—शीर्षों की पशु—मूर्तियाँ, सारनाथ का सिंहस्तंभ, रामपुरवा का बैल प्राचीन सिंधु घाटी से प्रवाहमान परम्परा के अनुकूल है। किन्तु वासुदेव शरण अग्रवाल ने महाभारत और आपस्तम्ब सूत्र से प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि चमकीली पालिश उत्पन्न करने की कला ईरान से कहीं पहले भारत में ज्ञात थी। मौर्यकाल से पूर्व और एक हद तक मौर्यकालीन स्थानों पर जो काली पालिश वाले मृदभांड पाए गए हैं उनसे प्रतीत होता है कि देश के इतिहास में एक युग ऐसा था जब ओपदार चमक में रुचि ली जाती थी। यह भी सिद्ध होता है कि पालिश का रहस्य केवल राजशिल्पियों तक सीमित नहीं था। पिंपरहवा स्तूप से मिली स्फटिक मंजूषा, पाटलिपुत्र के दो यक्ष और दीदारगंज की यक्षी में भी यह पालिश पाई जाती है। सारनाथ के धर्मचक्र की कल्पना नितांत भारतीय है।

ईरानी स्तंभों और मौर्य स्तंभों में स्पष्ट भेद हैं

स्वतंत्र स्तंभों की कल्पना भारतीय है। ईरानी स्तंभ नालीदार हैं जबकि भारतीय स्तंभ सपाट हैं। ईरानी स्तंभ अलग—अलग पाषाण—खंडों के बने हुए हैं किन्तु अशोक स्तंभ एक ही पत्थर के हैं। स्तंभ के शीर्ष भाग को घंटा कहा गया है। किन्तु भारतीय विद्वानों के अनुसार यह आवांगमुख कमल अथवा पूर्णघट है जो बाहर की ओर लहराती हुई कमल की पंखुड़ियों से ढका हुआ है। यदि कुछ समय के लिए इसे घंटा मान भी लिया जाए तो यह ईरानी घंटे से भिन्न है। तथाकथित मौर्य घंटा घटपल्लव या पूर्णघट के अभिप्राय के सदृश बनाया गया है। इसके अलावा ईरानी और मौर्य स्तंभ शीर्षकों के अलंकरणों में भी अंतर है। मौर्यकालीन शिल्पियों ने

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

चिरपरिचित परम्परा को अपनाया और अपनी प्रतिभा से उसे नवीन आकार प्रदान किया। यदि ईरानी प्रभाव को मान भी लिया जाए, तो भी अशोक स्तंभों की संगत राशी मूर्तिकला तथा अलंकरण को अखमीनी, ईरानी या यूनान की मूलाकृतियों की नक़ल मात्र नहीं माना जा सकता। विदेशी कला—लक्षणों का सम्यक् अध्ययन करके भारतीय कलाकारों ने अपनी प्रतिभा से रूपातंरण किया है और उन्हें अपने ढंग से कलाकृतियों में अभिव्यक्त किया है।[11,12]

स्तूप निर्माण

अशोक ने स्तूप निर्माण की परम्परा को भी प्रोत्साहन दिया। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार अशोक ने 8,400 स्तूप बनवाए। साँची तथा भरहुत के स्तूपों का निर्माण मूल रूप में अशोक ने ही करवाया था। शुंगों में साँची स्तूप का विस्तार हुआ।

मौर्य काल वास्तु कला

अशोक ने वास्तुकला के इतिहास में एक नई शैली का प्रारम्भ किया, अर्थात चट्टानों को काटकर कंदराओं का निर्माण किया। गया के निकट बाराबर की पहाड़ियों में अशोक ने अपने राज्याभिषेक के 12वें वर्ष में सुदामा गुहा आजीवक भिक्षुओं को दान में दी। इस गुफा में दो कोष्ठ हैं। एक गोल व्यास है जिसकी छत—अर्धवृत्त या ख़रबूज़िया आकार की है। उसके बाहर का मुखमंडप आयताकार है किन्तु छत गोलाकार है। दोनों कोष्ठों की भित्तियों और छतों पर शीशे जैसी चमकती हुई पालिश है। इससे ज्ञात होता है कि चैत्य गृह का मौलिक विकास अशोक के समय में ही प्रारम्भ हो गया था और इस शैली का पूर्ण विकास महाराष्ट्र के भाजा, कन्हेरी और कार्ले चैत्यगृहों में परिलक्षित होता है। अशोक के पुत्र दशरथ ने नागार्जुनी पहाड़ियों में आजाविकों को 3 गुफाएँ प्रदान कीं। इनमें से एक प्रसिद्ध गुफा गोपी गुफा है। इनका विन्यास सुरंग जैसा है। इसके मध्य में ढोलाकार छत और दोनों शिरों पर दो गोल मंडप हैं, जिनमें से एक को गर्भगृह और दूसरे को मुखमंडप समझना चाहिए। इसमें अशोककालीन गृहशिल्प की पूर्णतः रक्षा हुई है।

लोक कला

मौर्यकाल की लोक कला का ज्ञान उन महाकाय यक्ष—यक्षी मूर्तियों के द्वारा होता है जो मथुरा से पाटलिपुत्र, विदिशा, कलिंग और पश्चिम सूर्पारक तक पाई जाती है। इन यक्ष—यक्षियों की मूर्तियों की अपनी निजी शैली है, जिसका ठेठ रूप देखते ही अलग पहचाना जा सकता है। अतिमानवीय महाकाय मूर्तियाँ खुले आकाश के नीचे स्थापित की जाती थीं। इस सम्बन्ध में परखम ग्राम से प्राप्त यक्ष मूर्ति, पटना से प्राप्त यक्ष मूर्ति—जिस पर ओपदार चमक है और एक लेख भी है—पटना शहर में दीदारगंज से प्राप्त चामरग्राहिणी यक्षी—जिस पर भी मौर्य शैली की चमक है—और बेसनगर से प्राप्त यक्षी विशेष उल्लेखनीय है। ये मूर्तियाँ महाकाय हैं और माँसपेशियों की बलिष्ठता और दृढ़ता उनमें जीवंत रूप से व्यक्त हुई है। वे पृथक रूप से खड़ी है पर उनके दर्शन का प्रभाव सम्मुखीन है, मानों शिल्पी ने उन्हें सम्मुख दर्शन के लिए ही बनाया हो। उनका वेश है सिर पर पगड़ी, कंधों और भुजाओं पर उत्तरीय, नीचे धोती जो कटि में मेखला से कायबंधन से बँधी है। कानों में भारी कुँडल, गले में कंठा, छाती पर तिकोना हार और बाहुओं पर अंगद है। मूर्तियों को थोड़ा घटोदर दिखाया गया है जैसे परखम की मूर्ति में देखने को मिलता है। गुहा वास्तु

गुहा वास्तु(वास्तु कला)

गुहा वास्तु भारतीय प्राचीन वास्तुकला का एक बहुत ही सुन्दर नमूना है। अशोक के शासनकाल से गुहाओं का उपयोग आवास के रूप में होने लगा था। गया के निकट बराबर पहाड़ी पर ऐसी अनेक गुफाएँ विद्यमान हैं, जिन्हें सम्राट अशोक ने आवास योग्य बनवाकर आजीवकों को दे दिया था। अशोककालीन गुहायें सादे कमरों के रूप में होती थीं, लेकिन बाद में उन्हें आवास एवं उपासनागृह के रूप में स्तम्भों एवं मूर्तियों से अलंकृत किया जाने लगा। यह कार्य विशेष रूप से बौद्धों द्वारा किया गया। मौर्य काल का शासन प्रबंध मौर्यों के शासनकाल में भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की। 'चक्रवर्ती सम्राट' का आदर्श चरितार्थ हुआ। कौटिल्य ने चक्रवर्ती क्षेत्र को साकार रूप दिया। उसके अनुसार चक्रवर्ती क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय से हिन्द महासागर तक सारा भारतवर्ष है। 'मौर्य युग' में राजतंत्र के सिद्धांत की विजय है। इस युग में गण राज्यों का ह्रास होने लगा और शासन सत्ता अत्यधिक केन्द्रित हो गई। साम्राज्य की सीमा पर तथा साम्राज्य के अंदर कुछ अर्ध-स्वतंत्र राज्य थे, जैसे- काम्बोज, भोज, पैत्तनिक तथा आटविक राज्य।

परिणाम

भारत एक समृद्ध सांस्कृति विरासत और विविधताओं वाला देश है। यहां के मंदिर वास्तुकला से समृद्ध है। जिसकी शुरूआत सिंधु घाटी सभ्यता के बाद से मानी जाती है। भारत के मंदिर और अन्य वास्तुकलाओं में स्वदेशी सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक आवश्यकताओं और आर्थिक समृद्धि की झलक दिखाई देती है। इसलिए यहां की वास्तुकला का अध्ययन भारत की विभिन्न सांस्कृतिक विविधताओं को प्रकट करता है। भारत की अधिकांश प्राचीन कलाओं को धर्म द्वारा प्रोत्साहित किया जाता रहा है। इस लेख में हम आपको भारत के मंदिरों की स्थापत्य कला की प्रमुख शैलियों के बारे में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं।

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

गुप्त काल की वास्तुकला

भारतीय उपमहाद्वीप में चौथी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के उदय के साथ ही एक नए युग प्रारंभ हुआ, जिसे गुप्त काल के नाम से भी जाना जाता है। भारत में गुप्त काल में कला, साहित्य और वास्तुकला के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ। इस काल की मंदिर वास्तुकला और मूर्ति कला तकनीकी और कला से परिपूर्ण थी। ईंट, चूना और पत्थर से मंदिर निर्माण का चलन गुप्त काल से ही शुरू हुआ था।[8,9]

गुप्त युग ने मंदिर वास्तुकला के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ा। भारत में शिल्पशास्त्र जैसे वास्तु ग्रंथ इसी काल में लिखे गए थे। इसमें मंदिर स्थापत्य कला की 3 प्रमुख शैलियों का उल्लेख है। नीचे गुप्त काल की प्रमुख मंदिर शैलियों के बारे में विस्तार से जानकारी दी जा रही है।

- नागर वास्तुशैली
- द्रविड़ वास्तुशैली
- वेसर वास्तुशैली

नागर शैली हिमालय और विंध्य के बीच की भूमि से जुड़ी है और भारत के उत्तरी भागों में क्षेत्रीय रूप से विकसित हुई है। नागर शैली में 'नागर' शब्द की उत्पत्ति नगर से हुई मानी जाती है। इस शैली में, संरचना में दो इमारतें शामिल हैं, मुख्य लंबा मंदिर और एक निकटवर्ती मंडप जो छोटा है। इन दोनों इमारतों के बीच सबसे बड़ा अंतर शिखर के आकार का है। इस शैली के मुख्य मंदिर में, घंटी के आकार की संरचना जोड़ी जाती है।

नागर शैली के अंग

खजुराहो के मन्दिर नागर शैली में निर्मित हैं। इस शैली का प्रसार हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत माला तक देखा जा सकता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार नागर शैली के मंदिरों की पहचान, आधार से लेकर सर्वोच्च अंश तक इसका चतुष्कोण होना है। पुर्णतः विकसित नागर मंदिर में गर्भगृह, उसके समक्ष क्रमशः अन्तराल, मण्डप तथा अर्द्धमण्डप प्राप्त होते हैं। एक ही अक्ष पर एक दूसरे से संलग्न इन भागों का निर्माण किया जाता है।

शिल्पशास्त्र के अनुसार नागर मंदिरों के आठ प्रमुख अंग है –

- मूल आधार – जिस पर सम्पूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।
- मसूरक – नींव और दीवारों के बीच का भाग
- जंघा – दीवारें (विशेषकर गर्भगृह की दीवारें)
- कपोत – कार्निस
- शिखर – मंदिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का उपरी भाग
- ग्रीवा – शिखर का ऊपरी भाग
- वर्तुलाकार आमलक – शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का भाग
- कलश – शिखर का शीर्षभाग

नागर शैली के मंदिर मुख्य रूप से चार कक्षों से बने होते हैं। वो हैं –

- गर्भगृह
- जगमोहन
- नाट्यमंदिर

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

- भोगमंदिर

नागर शैली की दो विशिष्ट विशेषताएं इसकी योजना और उन्नयन हैं। योजना वर्गाकार है जिसमें प्रत्येक पक्ष के बीच में कई क्रमिक अनुमान हैं जो इसे एक क्रूसिफ़ॉर्म आकार प्रदान करते हैं। इसके चार प्रक्षेपण प्रकार हैं। जहां हर तरफ एक प्रक्षेपण- 'त्रिरथ', 'पंचरथ', 'सप्तरथ', 'नवरथ' । यह शिखर-A टॉवर को ऊंचाई में प्रदर्शित करता है, जो उत्तल वक्र में उत्तरोत्तर झुका हुआ होता है। योजना में अनुमानों को शिखर के ऊपर की ओर भी ले जाया जाता है। मूल रूप से नागर शैली में कोई स्तंभ नहीं थे।

9वीं-12वीं शताब्दी ईस्वी के बीच चोल साम्राज्य के दौरान द्रविड़ शैली दक्षिण में विकसित हुई। इसे कृष्णा और कावेरी नदियों के बीच के क्षेत्र में देखा जाता है। तमिलनाडु व निकटवर्ती क्षेत्रों में बने अधिकतर मंदिर द्रविड़ शैली में ही बने हुए हैं। द्रविड़ मंदिर स्थापत्य की दो सबसे महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं –

गर्भगृह में मंदिरों की 4 से अधिक भुजाएं होती हैं। टावर या विमान पिरामिडनुमा होते हैं। [9,10]

द्रविड़ शैली

इस शैली में मंदिर का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह के ऊपर का शिखर भाग प्रिज्मवत् या पिरामिडनुमा होता है। इन मंदिरों में क्षैतिज विभाजन लिए अनेक मंजिलें होती हैं।

द्रविड़ शैली के मंदिरों के शिखर के ऊपरी हिस्से पर कलश की जगह स्तूपिका बनी होती है। इस शैली के मंदिर काफी ऊंचे होते हैं और उनका प्रांगण भी बहुत बड़ा होता है, जिनमें कई कक्ष, जलकुण्ड और छोटे मंदिर बने होते हैं।

इन मंदिरों के प्रवेश द्वार को गोपुरम कहा जाता है। इनके प्रांगण में विशाल दीप स्तंभ व ध्वज स्तंभ के साथ कल्याणी या पुष्करिणी के रूप में जलाशय होते हैं।

द्रविड़ शैली के मंदिर के गर्भगृह के ऊपर बनी कई मंजिलों को विमाना कहा जाता है। इस स्थापत्य शैली में स्तंभों और खंबों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। द्रविड़ शैली के मंदिरों में भक्तों को प्रदक्षिणा करने के लिए गर्भगृह (मुख्य देवता का कमरा) के चारों ओर गोलाकार मार्ग बना होता है। इमसें सजावटी नक्काशीदार खंभों वाला एक स्तंभों वाला मंडप हॉल भी होता है। इसकी संरचना ऊंची दीवारों से घिरे एक प्रांगण के भीतर होती है। कैलाशनाथ मंदिर द्रविड़ वास्तुकला का एक प्रमुख उदाहरण है।

कैलाशनाथ मंदिर

कैलाशनाथ मंदिर, कांचीपुरम में स्थित है। इसे दक्षिण भारत के सबसे शानदार मंदिरों में से एक माना जाता है। कैलाशनाथ मंदिर कांचीपुरम का सबसे प्राचीन मंदिर होने के साथ-साथ द्रविड़ स्थापत्य कला का एक अद्भुत नमुना भी है। इस मंदिर का निर्माण पल्लव वंश के राजा नरसिंहवर्मन द्वितीय (राजसिंह) ने अपनी पत्नी के आग्रह पर करवाया था। इसका निर्माण आठवीं शताब्दी में हुआ था। इसे राजसिंह के पुत्र महेन्द्र वर्मन तृतीय ने बनवाया था। इसमें देवी पार्वती और शिव की नृत्य प्रतिमाएं हैं।

वेसर शैली, कृष्णा नदी और विंध्य के बीच के क्षेत्र की मंदिर निर्माण शैली है जो प्रारंभिक मध्यकाल के दौरान उभरी थी। इस शैली के कई मंदिर मध्य भारत और दक्कन के क्षेत्रों में बनाए गए थे। यह मंदिर वास्तुकला की नागर और द्रविड़ दोनों शैलियों का एक मिश्रण है। इस शैली के मंदिरों में टावरों की ऊंचाई कम होती है। बौद्ध चैत्यों के अर्ध-वृत्ताकार निर्माण भी इसी शैली से लिए गए हैं। इस शैली में संरचनाओं को बारीक रूप से तैयार किया जाता है और आकृतियों को बहुत सजाया जाता है और अच्छी तरह से पॉलिश किया जाता है।

वेसर शैली से जुड़े तथ्य

वेसर शैली, नागर और द्रविड़ शैली का मिश्रित रूप है। इसके निर्माण विन्यास में द्रविड़ शैली का तथा रूप में नागर शैली जैसे लगते हैं। चालुक्य वंश ने वेसर शैली कला को काफी प्रोत्साहन दिया था। इसलिए इस शैली के अधिकतर मंदिर विन्ध्य पर्वत श्रृखला और कृष्णा नदी के बीच मिलते हैं। कर्नाटक के चालुक्य वंश के मंदिर वेसर शैली के माने जाते हैं। इन मंदिरों का रूप विशिष्ट होता है।

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

भारत में मंदिर निर्माण का इतिहास

- भारत में अद्भुत शैलियों के साथ मंदिर निर्माण की शुरूआत चौथी से छठी शताब्दी के बीच गुप्तकाल के दौरान हुई थी। ऐसा माना जाता है कि इससे पहले भारत में लकड़ी के मंदिर बनते थे। गुप्त काल के बाद भारत में पत्थर और ईंटों से मंदिर निर्माण की शुरूआत हुई। भारत में 7वीं शताब्दी में आर्य संस्कृति वाले भागों में पत्थरों से मंदिरों का निर्माण होना पाया गया है।
- गुप्तकाल के दौरान मन्दिरों का निर्माण बहुत तेजी गति से हुआ था। कुछ पूराने हिन्दू मंदिरों में बौद्ध मंदिरों की शैली भी विद्यमान है। उस समय के मंदिरों में मूर्तियों को मध्य में रखा जाता था जिसके चारों ओर परिक्रमा मार्ग होता था। गुप्त काल के प्रारंभ के मंदिर जैसे सांची के बौद्ध मंदिरों आदि की छत सपाट होती थी। बाद में इनके शिखरों की ऊंचाई धीरे- धीरे बढती गई।
- जैन और बौद्ध पंथ द्वारा कृत्रिम गुफाओं का निर्माण किया जाता था लेकिन हिंदू मंदिरों में वास्तविक गुफाएं हुआ करती थी। उस दौर में मंदिरों में शिलाओं को काटकर गुफाएं बनाई जाती थी। 7वीं शताब्दी में अनेक मंदिरों का निर्माण चट्टानों को काटकर किया गया था। इनमें चेन्नई के दक्षिण में पल्लवों द्वारा स्थापित महाबलिपुरम् विशिष्ठ स्थान रखता है।
- गुप्त काल से हिन्दू मंदिरों का महत्त्व और विस्तार काफी बढ़ा। इस दौर में बने मंदिरों की बनावट पर गुप्त वास्तुकला का विशेष प्रभाव है। भारत के उड़ीसा और मध्यप्रदेश के खजुराहो में भी उत्कृष्ट वास्तुकला के नमुने देखने को मिलते हैं। उड़ीसा का करीब 1000 वर्ष पुराना लिंगराजा का मन्दिर वास्तुकला का सर्वोत्तम उदाहरण है। वहीं, कोणार्क का सूर्य मंदिर इस क्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध मंदिर है। इसका निर्माण 13वीं शताब्दी में हुथा था।

निष्कर्ष

भारत में स्थापत्य व वास्तुकला की उत्पत्ति हड़प्पा काल से माना जाता है। स्थापत्य व वास्तुकला के दृष्टिकोण से हड़प्पा संस्कृति तत्कालीन संस्कृतियों से काफी ज्यादा आगे थी। भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला की सबसे खास बात यह है कि इतने लंबे समय के बावजूद इसमें एक निरंतरता के दर्शन मिलते हैं। इस मामले में भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से इतर है।[7,8] सिंधु घाटी सभ्यता

सिंधु घाटी सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता का काल 3500-1500 ई.पू. तक माना जाता है। इसकी गिनती विश्व की चार सबसे पुरानी सभ्यताओं में किया जाता है। हड़प्पा की नगर योजना इसका एक जीवंत साक्ष्य है। नगर योजना इस तरह की थी कि सड़के एक-दूसरे को समकोण में काटती थीं। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो इस सभ्यता के प्रमुख नगर थे। यहां की इमारतें पक्की ईंटों की बनाई जाती थीं। यह एक ऐसी विशेषता है जो तत्कालीन किसी अन्य सभ्यता में नहीं पाई जाती थी। मोहनजोदड़ो की सबसे बड़ी इमारत उसका स्नानागार था। घरों के निर्माण में पत्थर और लकड़ी का भी प्रयोग किया जाता था।

मोहनजोदड़ो से मिली मातृ देवी, नाचती हुई लड़की की धातु की मूर्ति इत्यादि तत्कालीन उत्कृष्ट मूर्तिकला के अनुपम उदाहरण हैं।

मौर्यकाल:

मौर्यकाल के दौरान देश में कई शहरों का विकास हुआ। मौर्यकाल भारतीय कलाओं के विकास के दृष्टिकोण से एक युगांतकारी युग था। इस काल के स्मारकों व स्तंभों को भारतीय कला के क्षेत्र में मील का पत्थर माना जाता है। इस काल के स्थापत्य में लकड़ी का काफी प्रयोग किया जाता था। अशोक के समय से भवन निर्माण में पत्थरों का प्रयोग प्रारंभ हो गया था। ऐसा माना जाता है कि अशोक ने ही श्रीनगर (कश्मीर) व ललितपाटन(नेपाल) नामक नगरों की स्थापना की थी। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार अशोक ने अपने राज्य में कुल 84,000 स्तूपों का निर्माण कराया था। हालांकि इसको अतिश्योक्ति माना जा सकता है। स्थापत्य के दृष्टिकोण से सांची, भारहुत, बोधगया, अमरावती और नागार्जुनकोंडा के स्तूप प्रसिद्ध हैं। अशोक ने 30 से 40 स्तम्भों का निर्माण कराया था। अशोक के समय से ही भारत में बौद्ध स्थापत्य शैली की शुरुआत हुई। इस काल के दौरान गुफाओं, स्तम्भों, स्तूपों और महलों का निर्माण कराया गया। अशोक के स्तम्भों से तत्कालीन भारत के विदेशों से संबंधों का खुलासा होता है। पत्थरों पर पॉलिश करने की कला इस

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

काल में इस स्तर पर पहुँच गई थी कि आज भी अशोक की लाट की पॉलिश शीशे की भांति चमकती है। मौर्यकालीन स्थापत्य व वास्तुकला पर ग्रीक, फारसी और मिस्र संस्कृतियों का पूरी तरह से प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। परखम में मिली यक्ष की मूर्ति, बेसनगर की मूर्ति, रामपुरवा स्तम्भ पर बनी साँड की मूर्ति तथा पटना और दीदारगंज की मूर्तियां विशेष रूप से कला के दृष्टिकोण से अद्वितीय हैं।

शुंग, कुषाण और सतवाहन:

232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु के थोड़े काल पश्चात ही मौर्य वंश का पतन हो गया। इसके बाद उत्तर भारत में शुंग और कुषाण वंशों और दक्षिण में सतवाहन वंश का शासनकाल आया। इस समय के कला स्मारक स्तूप, गुफा मंदिर (चैत्य), विहार, शैलकृत गुफाएं आदि हैं। भारहुत का प्रसिद्ध स्तूप का निर्माण शुंग काल के दौरान ही पूरा हुआ। इस काल में उड़ीसा में जैनियों ने गुफा मंदिरों का निर्माण कराया। उनके नाम हैं- हाथी गुम्फा, रानी गुम्फा, मंचापुरी गुम्फा, गणेश गुम्फा, जय विजय गुम्फा, अल्कापुरी गुम्फा इत्यादि। अजंता की कुछ गुफाओं का निर्माण भी इसी काल के दौरान हुआ। इस काल के गुफा मंदिर काफी विशाल हैं। इसी काल के दौरान गांधार मूर्तिकला शैली का भी विकास हुआ। इस शैली को ग्रीक-बौद्ध शैली भी कहते हैं। इस शैली का विकास कुषाणों के संरक्षण में हुआ। गांधार शैली के उदाहरण हद्दा व जैलियन से मिलते हैं। गांधार शैली की मूर्तियों में शरीर को यथार्थ व बलिष्ठ दिखाने की कोशिश की गई है। इसी काल के दौरान विकसित एक अन्य शैली-मथुरा शैली गांधार से भिन्न थी। इस शैली में शरीर को पूरी तरह से यथार्थ दिखाने की तो कोशिश नहीं की गई है, लेकिन मुख की आकृति में आध्यात्मिक सुख और शांति पूरी तरह से झलकती है।
सतवाहन वंश ने गोली, जग्गिहपेटा, भट्टीप्रोलू, गंटासाला, नागार्जुनकोंडा और अमरावती में कई विशाल स्तूपों का निर्माण कराया।[6,7]

गुप्तकालीन वास्तु व स्थापत्य:

गुप्तकाल के दौरान स्थापत्य व वास्तु अपने चरमोत्कर्ष पर था। इस काल के मंदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरों पर पत्थर एवं ईंटों से किया जाता था। गुप्तकालीन मंदिरों के सबसे भव्य और महत्वपूर्ण मंदिर देवगढ़ (झाँसी के पास) और भीतरगांव (कानपुर) हैं। इन मंदिरों में रामायण, महाभारत और पुराणों से विषय-वस्तु ली गई है। भीतरगांव (कानपुर) का विष्णु मंदिर ईंटों का बना है और नक्काशीदार है।
गुप्तकाल की अधिकांश मूर्तियाँ हिंदू-देवताओं से संबंधित हैं। शारीरिक नग्नता को छिपाने के लिए गुप्तकाल के कलाकारों ने वस्त्रों का प्रयोग किया। सारनाथ में बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति और सुल्तानगंज में बुद्ध की तांबे की मूर्ति उल्लेखनीय हैं। विष्णु की प्रसिद्ध मूर्ति देवगढ़ के दशावतार मंदिर में स्थापित है।

चोलकाल:

चोलों ने द्रविड़ शैली को विकसित किया और उसको चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। राजाराज प्रथम द्वारा बनाया गया तंजौर का शिव मंदिर, जिसे राजराजेश्वर मंदिर भी कहा जाता है, द्रविड़ शैली का उत्कृष्ट नमूना है। इस काल के दौरान मंदिर के अहाते में गोपुरम नामक विशाल प्रवेश द्वार का निर्माण होने लगा। प्रस्तर मूर्तियों का मानवीकरण चोल मूर्तिकारों की दक्षिण भारतीय कला को महान देन थी। चोल काँस्य मूर्तियों में नटराज की मूर्ति सर्वोपरि है।[12]

संदर्भ

1. "मंदिरों का सामान्य इतिहास व विवरण". देवस्थान विभाग देवस्थान राजस्थान. २६ अप्रैल २०१८.
2. "मंदिरों का सामान्य इतिहास व विवरण". देवस्थान विभाग देवस्थान राजस्थान. २६ अप्रैल २०१८.
3. ↑ खजुराहो की स्थापत्य कला एवं मन्दिर स्थापत्य Archived 2018-04-27 at the वेबैक मशीन। द्वितीय अध्याय। शोधगंगा
4. ↑ शर्मा, डा०श्याम; प्राचीन भारतीय कला, वास्तु कला एवं मूर्ति कला। रिसर्च पब्लिकेशंस, जयपुर। एन. डी॥ पृ११४-११५
5. भारत में मंदिर निर्माण शैली और प्रमुख मंदिर (लक्ष्य)
6. प्रासादों के आठ शिखर (डॉ एस के जुगनू)
7. A Visual Glossary of Hindu Architecture
8. दुर्भेद्य दुर्गों की कहानी (डॉ श्रीकृष्ण जुगनू)

| e-ISSN: 2278 – 8875, p-ISSN: 2320 – 3765| www.ijareeie.com | Impact Factor: 8.18| | A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 11, Issue 4, April 2022||

|DOI:10.15662/IJAREEIE.2022.1104044 |

9. 'दुर्गबत्तीसी' के संयोजनकार : महाराणा कुम्भा (डॉ श्रीकृष्ण जुगनू)
10. राजस्थान के दुर्गों का परिचय
11. राजस्थान के दुर्ग
12. भारत के 10 शानदार ऐतिहासिक किले (वेबदुनिया)

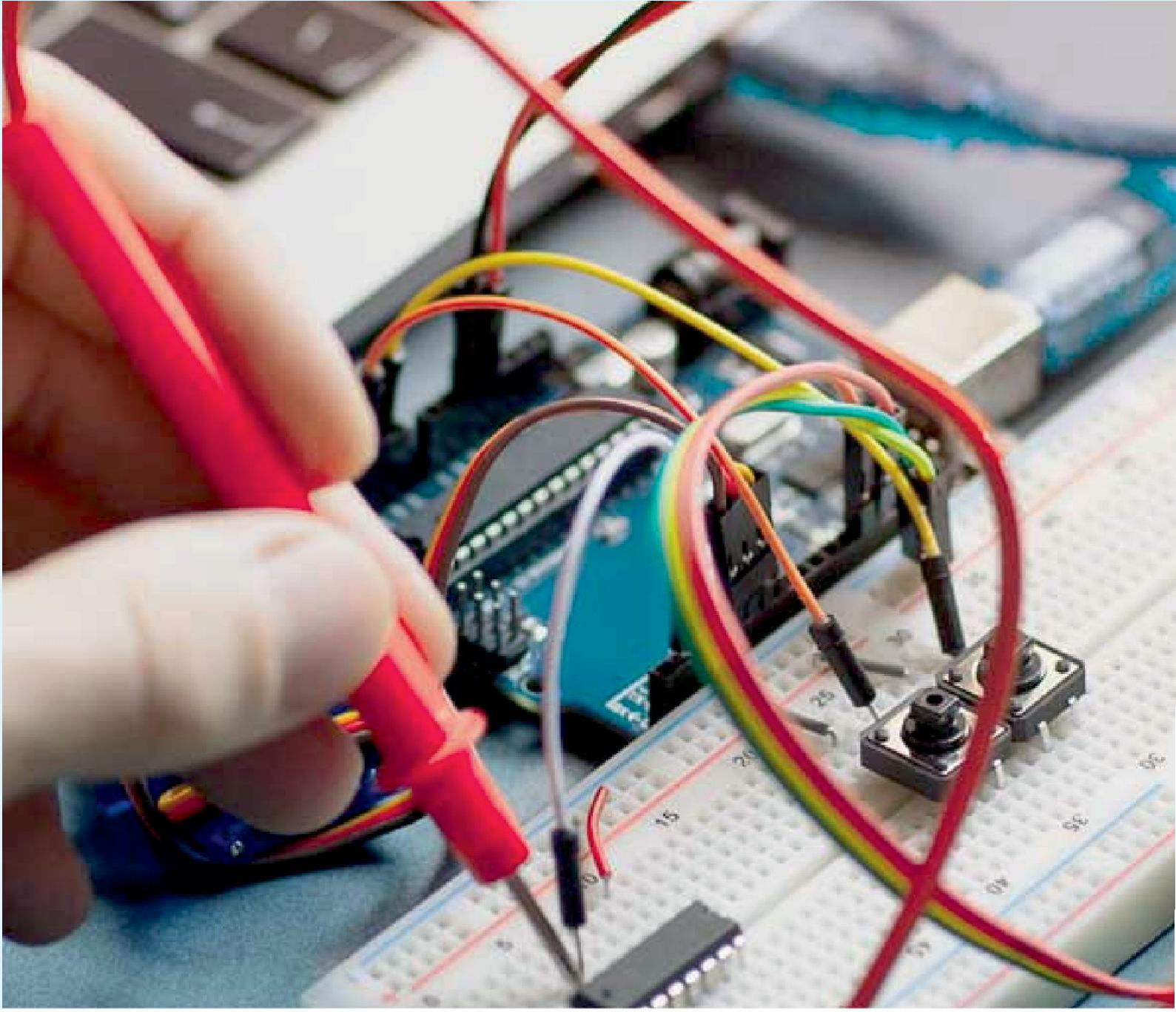

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor

doi cross ref

ISSN INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर NISCAIR

Impact Factor: 8.18

International Journal of Advanced Research

in Electrical, Electronics and Instrumentation Engineering

9940 572 462 6381 907 438 ijareeie@gmail.com

www.ijareeie.com

Scan to save the contact details